बुन्देली लोकवाद्य

डॉ. गीता राजपूत
अतिथि विद्वान संगीत
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

बुन्देली संस्कृति लोकवाद्यों की दृष्टि से धनी है। यहाँ कई प्रकार के वाद्य प्रचलित हैं जिनका उपयोग विभिन्न अवसरों पर किया जाता है। यहाँ प्रत्येक अवसर पर गाये जाने वाले गीतों के साथ बजने वाले वाद्यों की भूमिका महत्वपूर्ण है। जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, पर्व, तीज-त्यौहार आदि सुअवसरों पर इन वाद्यों का वादन होता है।

बुन्देली लोक संगीत में वाद्यों से सम्बन्धित कहीं कोई नियम तथा बन्धन नहीं रहा है। आवश्यकता पड़ने पर नये वाद्यों को भी लोकसंगीत ने अपने में आत्मसात किंया है। बुन्देलखण्ड में सहज उपलब्ध घरेलू वस्तुओं को भी लोकवाद्य के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा है, जैसे कि महिलायें ढोलक के साथ काँसे या पीतल का लोटा दो सिक्कों की सहायता से गाते समय वाद्य के रूप में बजाती हैं।

इसी प्रकार कुछ लोग अपने गायन में ढोलक के साथ काँसे या पीतल के कटोरे का उपयोग करते हैं। कुम्हार जाति के लोगों में मिट्टी का मटका प्रयोग में लाया जाता है, जिसका अनुकरण वर्तमान में अन्य लोग भी करने लगे हैं। साधू-सन्त लोग अपने भजन में 'चिमटा' का प्रयोग वाद्ययंत्र के रूप में तथा भिक्षुक लोग 'चिमटी' या 'चटकोला' का प्रयोग करते हैं।

भारतीय वाद्यों को चार प्रमुख वर्गों - तत्, सुषिर, अवनद्य तथा घन वाद्य में वर्गीकृत किया गया है। अतः सुविधा की दृष्टि से बुन्देली वाद्यों को भी चार वर्गों के अंतर्गत रखके उनका प्रस्तुतिकरण किया जा रहा है।

तत् या तंत्री वाद्य- तत् वाद्यों वे अन्तर्गत वे वाद्य आते हैं, जिनमें तार या तन्तुओं का उपयोग किया जाता है[1]। तत् या तंत्री दो प्रकार के होते हैं। एक तत् वाद्य और दूसरा वितत् वाद्य। तत् वाद्यों के अंतर्गत तानपूरा व इकतारा आते हैं और वितत् वाद्यों में सारंगी आता है इसे किंगीरी भी कहा जाता है।[2] बुन्देली वाद्यों में इकतारा (तम्बूरा) व किंगीरी ही आते हैं।

किंगीरी - बुन्देली लोक संगती का यह एक प्राचीन वाद्य है। नारियल के अर्धखण्ड को चर्म से अवनद्ध कर उसमें एक वंश दण्ड नियोजित कर तार के स्थान पर अश्वपुच्छ के बालों के उपयोग से सारंगी की भाँति बजाया जाता है। बजाने में जिस कमानी का उपयोग किया जाता है वह भी अश्वपुच्छ के बालों की बनी होती है।[3] इस वाद्य का प्रयोग अधिकांशतः कथा गीतों में किया जाता है।

तम्बूरा (इकतारा) - मँझले आकार के तुम्बे को बाँस का आधार देकर बाँधा जाता है तथा लकड़ी के टुकड़ों और डोरी के माध्यम से इस पर एक तार लगाया जाता है। प्रचलित तानपूरे के समान ही इसे अंगुली से बजाया जाता है। एक तार के प्रयुक्त होने से इसका नाम इकतारा भी हो गया।[4] साधू संत भजन गाते समय इस वाद्ययंत्र का प्रयोग करते हैं।

सुषिर वाद्य

जिन वाद्यों में मुँह की हवा या फूँक से नाद उत्पन्न करते हैं, उन्हें फूँक वाद्य या शास्त्रीय भाषा में 'सुषिर वाद्य' कहते हैं।[4] लोक में निर्धनता व्याप्त रही है अतः सस्ते एवं सर्वसुलभ सुषिर वाद्यों को निर्धन एवं निम्न वर्ग के लोगों ने अपना लिया। वंशी वाद्य इसका अपवाद है। चरवाहा से लेकर अट्टालिका पर रहने वाले प्रेमी बंधु भी वंशी की स्वरावली का आनन्द लेते हैं।[5]

बुन्देलखण्ड में सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत-शंख, बाँसुरी (वंशी), मुरली तथा तुरही इत्यादि आते हैं। शंख-साहित्य एवं दर्शन में विष्णु भगवान को सत्वगुण का प्रतीक माना गया है, अतः भगवान विष्णु ने सत्वगुण सम्पन्न शंख वाद्य को ही धारण किया है।[6] संगीत रत्नाकर संगीत पारिजात तथा संगीत सार आदि ग्रंथों में शंख का विधिवत् उल्लेख मिलता है। अहोबल के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें न केवल एक स्वर अपितु सम्पूर्ण राग का वादन सम्भव था।[7] बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का प्रयोग प्रायः ईश आराधना व आरती के लिए किया जाता है। यह एक मंगल वाद्य की श्रेणी में आता है। इस वाद्य का उपयोग कथा भागवत के पश्चात् अनिवार्य रूप से किया जाता है।

तुरही - संस्कृत के 'तूर्य' शब्द से तुरही की उत्पत्ति हुई है। यह शहनाई से मिलता-जुलता वाद्य है। इसका निर्माण ताँबे या पीतल से किया जाता है। इसमें एक नलिका होती है, जिसका मुख भाग वाद्य से जुड़ा होता है। इसकी लम्बाई में काफी अंतर भी देखा जाता है। प्रायः इसकी लम्बाई 69 से. मी. से 127 से. मी. देखी जाती है।[8]

बाँसुरी - महाभारत में सुषिर वाद्यों के अंतर्गत 'वेणु' का उल्लेख मिलता है जो बाँसुरी का ही रूप प्रतीत होता है। सर्वप्रथम बाँस से इसका निर्माण हुआ जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है, इसके पश्चात् लकड़ी, हाथी-दाँत, चन्दन, लोहे, काँसे या चाँदी तथा सोने से इसका निर्माण किया जाने लगा।[10]

बुन्देलखण्ड में दिबारी, राई, रसिया तथा फागों इत्यादि के साथ इस वाद्य का उपयोग किया जाता है तथा इसका प्रयोग प्रायः पुरूष वर्ग के द्वारा किया जाता है। इसमें सात स्वरों के निर्गमन के लिए सात छेद होते हैं तथा आठवाँ छेद वायु निकालने के लिए होता है।

अवनद्य वाद्य

अवनद्य शब्द का अर्थ है - चारों ओर से मढ़ा हुआ। जो वाद्य भीतर से पोले तथा चर्म से मढ़े होते हैं और हाथ या अन्य किसी वस्तु के माध्यम से बजाये जाते हैं 'अवनद्य' या आनद्ध वाद्य कहे जाते हैं।[11]

इनमें से कुछ वाद्य ऐसे हैं जिनमें एक ही ओर चमड़ा मढ़ा रहता है अर्थात् उनका एक ही मुख होता है और कुछ वाद्य ऐसे हैं, जिनके दो मुख होते हैं और दोनों मुखों पर चर्म मढ़ा होता है। बुन्देलखण्ड में नगाड़ा, नगड़िया, ढोलक, डप या डपली, खंजरी, हुड़क, डमरू, भृदंग (परवावज) इत्यादि अवनद्ध वाद्य लोकसंगीत में प्रचलित हैं।

नगड़िया - यह मिट्टी व चर्म के सहयोग से निर्मित अवनद्ध वाद्य है। इसे नगाड़े का छोटा रूप भी कहा जा सकता है। इसे नगाड़े की तरह लकड़ी के टुकड़ों से बजाया जाता है। बुन्देलखण्ड में इसका उपयोग महिला वर्ग के सांस्कारिक नेंग दस्तूरों के समय जैसे-देवी पूजन, जन्म संस्कार, विवाह संस्कार, जनेऊ, मुण्डन, कर्णछेदन, यज्ञोपवीत इत्यादि के अवसर पर किया जाता है।[12] फाग आल्हा व अन्य जोशीले गीतों में भी इस वाद्य का उपयोग किया जाता है।

नगाड़ा - दुंदुभि नामक प्राचीन वाद्य का नाम वेद-पुराणों में मिलता है। रणभूमि में विशेष रूप से इस वाद्य का प्रयोग किया जाता था। वर्तमान में इस वाद्य को नगाड़ा नाम से सम्बोधित किया जाता है।[13] बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का उपयोग प्रायः मंगल पर्वों तथा फागों के साथ किया जाता है।

हुड़क - बुन्देलखण्ड में कहार जाति के लोग डमरूनुमा 'ढोलक' का प्रयोग करते हैं, जिसे हुड़क या देहकी कहते हैं। इस वाद्य को एक ओर से ही बजाया जाता है, फलस्वरूप ढोलक से भिन्न ध्वनि निकलती है, जो उसके अटूट स्वर में तन्मयता ला देती है।[14]

जायसीकृत 'पद्मावत' में इसी से मिलते वाद्य का नाम आउज मिलता है। संगीत पारिजात व संगीत रत्नाकर में हुडक्का नाम के वाद्य का वर्णन मिलता है। जैन साहित्य में हुड़क का नाम अवनद्य वाद्यों के अंतर्गत आया है।

डफ (ढप) - इतिहासकार अबुलफजल के आइने अकबरी में वर्णित वाद्यों की सूची में इस वाद्य का नाम मिलता है, इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मुगल काल में ही इस वाद्य का प्रचार व प्रसार मिला।[15] आदिम वाद्य डमरू को बीच से काटने पर 'डफ' लोकवाद्य बनता है।

डफ को आधी ढोलक भी कहते हैं, इसका घेरा ढोलक से बड़ा होता है।[16] चमड़े से मढ़ी बद्दी द्वारा धातु के गोल छल्ले के माध्यम से इसके स्वर को चढ़ाया तथा उतारा जाता है। कभी-कभी डफ में चारों तरफ कील ठोककर चमड़ा मढ़ा जाता है। इस प्रकार के डफ के स्वर को ऊँचा करने के लिए आग में सेंका जाता है तथा स्वर उतारने के लिए गीले कपड़े से पोंछ लिया जाता है। डफ के मुखाच्छादन के लिए बकरा या भैंस का चमड़ा उपयोग में लिया जाता है।[17] बुन्देलखण्ड में इस वाद्य को बोलचाल की भाषा में चंग कहते हैं। होरी या फाग के साथ इस वाद्य की संगति की जाती है। लम्बी फागें प्रायः 'डफ' या 'चंग' के साथ एक ही व्यक्ति के द्वारा गाई जाती होंगी, इसलिए इन्हें डफ या चंग की फाग कहते हैं।[18]

ढाक - यह भी एक बुन्देली लोकवाद्य है। इसे डफ का बड़ा रूप कहा जा सकता है।[19] इस वाद्य का उपयोग भी फाग गायन में किया जाता है।

ढोलक - बुन्देली लोकवाद्यों में सर्वाधिक प्रचलित लोकवाद्य ढोलक है। गायन के पीछे ढुलकती हुई चलने के कारण इस वाद्य ने ढोलक का सम्बोधन पाया।[20] बुन्देली भाषा में ढोलक को 'ढुलकिया' कहा जाता है। इसकी बनावट मृदंग की तरह होती है। ढोलक का ढाँचा लकड़ी द्वारा निर्मित होता है। दाँया मुख बाँये मुख की अपेक्षा व्यास में कुछ छोटा होता है। दोनों मुख चमड़े से आच्छादित होते हैं, जो डोरी से कसे रहते हैं। बाँये मुख का आच्छादित चमड़ा दाहिने मुख वाले चमड़े की अपेक्षा कुछ मोटा होता है जिस कारण इसकी ध्वनि में गम्भीरता आती है। कुछ ढोलकों के मुखों पर स्याही का लेप नहीं किया जाता, किन्तु प्रायः इन पर स्याही का लेप किया जाता है। ढोलक को चढ़ाने व उतारने के लिए लकड़ी के टुकड़ों या धातुओं के छल्ले लगाये जाते हैं। इनको सरकाने से ध्वनि में उतार चढ़ाव आता है। ढोलक का प्रयोग करीब-करीब सभी लोकगीतों में महिला वर्ग व पुरूष वर्ग दोनों समान रूप से करते हैं। रस व लय निर्माण दोनों की दृष्टि से 'ढोलक' महत्वपूर्ण है।

पखावज या मृदंग - कुछ लोगों का मत है कि मिट्टी के खोल वाली पखावज का नाम मृदंग है तथा लकड़ी के खोल वाली का नाम पखावज है। कुछ लोग दोनों को एक ही मानते हैं। वास्तव में दोनों एक ही वाद्य के लिए प्रयुक्त भिन्न संज्ञा है।[21]

परवावज अथवा मृदंग के दो मुख होते हैं जो चर्म से आच्छादित रहते हैं। इसमें केवल एक ओर स्याही लगाई जाती है, दूसरी ओर गुथा हुआ आटा लगाया जाता है। इसके ऊपर बद्दी (रस्सी) में लकड़ी के गट्टे लगाये जाते हैं। लोक संगीत व शास्त्रीय संगीत की विधा 'ध्रुवपद' दोनों में इस वाद्य को आदर प्राप्त है।

डमरू - जैसा कि मानसोल्लास, संगीत रत्नाकर, संगीत पारिजात और संगीत सार में विवेचित है - 'डमरू लगभग दो मुठ्ठी लम्बा तथा बीच में एकदम पतला होता है। इसके मुखों का व्यास लगभग एक मुठ्ठी होता है, जो पतले चमड़े से ढका रहता है। ये चमड़े दोनों ओर से एक पतली रस्सी से कसे रहते हैं। इस रस्सी के मध्य में जहाँ वाद्य पतला रहता है, रस्सी के ऊपर एक कड़े के समान रस्सी कसी रहती है और उसके दोनों छोर लटकते रहते हैं। इन दोनों सिरों पर एक-एक घुण्डी बनी होती है। इसे सीधे हाथ से मध्य में पकड़कर घुमाया जाता है जिससे घुण्डियाँ, मुखों पर प्रहार कर शब्द उत्पन्न करती है।[22]

भगवान शंकर की आरती करते समय तथा आरती गाते समय 'शंख' व 'डमरू' का प्रयोग बुन्देलखण्ड में किया जाता है। इसके अतिरिक्त बन्दर व भालू नचाने वाले मदारी भी इस वाद्य का उपयोग करते हैं।

खँजरी- यह एक मुख से युक्त, मूल्य और वादन दोनों दृष्टि से सस्ता वाद्य है। यह बाँये हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ से बजाया जाता है। इसका व्यास पौन बित्ता है, लम्बाई तीन या चार अंगुल की है। यह गोह के चमड़े से मढ़ा जाता है। पिण्ड में तीन या चार द्वार हैं। जिनमें दो ताम्र के सिक्के प्रत्येक द्वार पर शब्द की उत्पत्ति के लिए लगाये जाते हैं।[23]

खँजरी का प्रयोग विशेष रूप से भजन, कथागीतों, भिखारियों द्वारा गाये जाने वाले गीत तथा फाग में किया जाता है। सभी अवनद्य लोकगीतों में दादरा, कहरवा के बोल सुंदर व स्पष्ट निकलते हैं।

घनवाद्य

वाद्यों की इस श्रेणी में वे वाद्य आते हैं जिन पर चोट या आघात से स्वर उत्पन्न होता है।[24] ये वाद्य पीतल, ताँबा या कांस्य आदि धातुओं से निर्मित होते हैं। इसमें मंजीरा, करताल, झाँस, घुँघरू, झालर, घण्टा, चमीटा, कसावरी, रेकड़िया, झींका, लोटा आदि प्रमुख हैं।

झाँस- यह काँसे अथवा पीतल से बना गोलागार वाद्य है। व्यास लगभग सोलह अंगुल तक होता है। बीच में छेद होता है। छेद में डोरी डालकर भीतर से गाँठ लगा देते हैं। ऊपर पकड़ने के लिए कपड़ा लगाते हैं।[25]

मंजीरा - यह वाद्य कांसा, पीतल फूल तथा अष्टधातु से निर्मित रहता है। यह गोलाकार होता है तथा इनका व्यास लगभग चार अंगुल का होता है। इसके मध्य में गहराई लिए एक छिद्र होता है जिनमें सुतली (डोरी) पिरोई जाती है।[26] इस सुतली को अँगुलियों में लपेटकर यह वाद्य बजाया जाता है। इस वाद्य का उपयोग भक्ति गीतों व आल्हा और फाग में किया जाता है।

कसारी - यह एक प्रकार से काँसे की थाली है। बाँये हाथ से पकड़ दाहिने हाथ से लकड़ी के टुकड़े के आघात से इसे बजाया जाता है।[27] बुन्देलखण्ड में दिवारी नृत्य गीत में इसका प्रयोग किया जाता है। पुत्र जन्म के अवसर पर काँसे की थाली बजाने की भी एक प्राचीन परम्परा अभी जीवित है।

चिमटी - लकड़ी से निर्मित खड़ताल से मिलता-जुलता यह एक लघुवाद्य है। इसके दो भाग होते हैं। दोनों भागों में अंगुलियों तथा अँगूठा फँसाने के लिए स्थान बना रहता है। परस्पर आघात करने से किट-किट ध्वनि निर्मित होती है। बुन्देलखण्ड में वसुदेवा तथा सरमन की कथा गाते समय इसका उपयोग करते हैं।

बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली गौड़ जाति की महिलाएँ इस चिमटी से मिलता-जुलता वाद्य 'चटकोला' बजाकर सिताम या शैताम नृत्य करती हैं। वसुदेवा चिमटी को चटकोला भी कहते हैं।[28]

इस प्रकार हमने देखा कि बुन्देली लोक संगीत में शास्त्रीय संगीत के समान ही तत, सुषिर, अवनद्ध तथा घनवाद्य लोक में पाये जाते हैं। जो अपनी विशिष्टताओं के कारण बुन्देली लोक संगीत के माधुर्य को बढ़ाते हैं।

संदर्भ

1. संगीत वाद्य वादन अंक - डॉ. विश्वनाथ शुक्ल, पृ. 21
2. बुन्देली बसन्त 2010 - डॉ. गायत्री बाजपेई, पृ. 41
3. बुन्देली फाग साहित्य - डॉ. श्याम सुंदर बादल, पृ. 103
4. बुन्देली लोक संस्कृति - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. 109
5. बुन्देलखण्ड का लोकजीवन - अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद', पृ. 38
6. भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास - डॉ. राधेश्याम जायसवाल, पृ. 150
7. वही, पृ. 150
8. भारतीय संगीत वाद्य - डॉ. लालमणि मिश्र, पृ. 106
9. बुन्देली लोक संगीत - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. 110
10. प्राचीन भारत में संगीत - डॉ. धर्मावती श्रीवास्तव, पृ. 103
11. बुन्देली बसन्त 2011 - डॉ. गायत्री बाजपेई, पृ. 41
12. बुन्देली लोक संस्कृति - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. 111
13. भारतीय अवनद्य वाद्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन - जवाहरलाल नायक, पृ. 141
14. लोक संगीत अंक (1969) - लक्ष्मीनारायण गर्ग, पृ. 40
15. संगीत पत्रिका (1958) - लक्ष्मीनारायण गर्ग, पृ. 24
16. लोक संगीत अंक (1969) - लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ. 40
17. भारतीय अवनद्य वाद्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन - जवाहरलाल नायक, पृ. 201
18. बुन्देली फाग साहित्य - डॉ. श्याम सुंदर बादल, पृ. 77
19. वही, पृ. 77
20. संगीत शास्त्र - के वासुदेव शास्त्री, पृ. 282
21. भारतीय अवनद्य वाद्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन - जवाहरलाल नायक, पृ. 224
22. वही - पृ. 188
23. संगीत शास्त्र - के. वासुदेव शास्त्री. पृ. 282
24. वुन्देली वसन्त 2009 - चिंतामणि वर्मा एडवोकेट, पृ. 37
25. वुन्देलखण्ड का लोकजीवन - अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद', पृ. 39
26. वुन्देली लोक संस्कृति - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. 115
27. भारतीय संगीत वाद्य - डॉ. लालमणि मिश्र पृ. 111
28. वुन्देली लोक संस्कृति - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. 115